ResearchNext International Multidisciplinary Journal

Vol- 2, Issue- 1, January-March 2026 ISSN (O)- 3107-9725

Email id: editor@researchnextjournal.com Website- www.researchnextjournal.com

स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलित स्त्री चेतना और संघर्ष

पुजा कुमारी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

डॉ० स्वर्ण मणि

शोध पर्यवेक्षिका, वरीय सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, टी० पी० कॉलेज, भूपेंद्र नारायण मंडल विश्विद्यालय, मधेपुरा, बिहार

Article Info: *(Recieved- 27/12/2025, Accept- 02/02/2026, Published- 10/02/2026)*

DOI- 10.64127/rnimj.2026v2i1009

सारांश–

प्रस्तुत शोध लेख स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलित स्त्री चेतना और संघर्ष स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में दलित महिलाओं के विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक विमर्श का एक गहन अध्ययन है। यह लेख इस तर्क को मजबूत आधार प्रदान करता है कि दलित स्त्री की समस्याएँ मुख्यधारा के नारीवाद से भिन्न हैं, क्योंकि वे जाति और लिंग के श्दोहरे अभिशापश से निर्मित होती हैं। इस अध्ययन के माध्यम से यह विश्लेषण किया गया है कि बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर के वैचारिक आंदोलनों ने किस प्रकार दलित महिलाओं में आत्म–सम्मान और विधिक चेतना का बीजारोपण किया। इस लेख में दलित लेखिकाओं की आत्मकथाओं और साहित्य को प्रतिरोध के स्वर के रूप में रेखांकित किया गया है, जिसने सदियों के मौन को तोड़कर एक स्वतंत्र अस्मिता की पहचान स्थापित की। साथ ही, यह शोध लेख नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित विमेन जैसे संगठनों के उदय और पंचायती राज में दलित महिलाओं की बढ़ती भागीदारी का भी परीक्षण करता है। अंततः, यह लेख इंटरसेक्शनलिटी (जाति और लिंग के संमिलन) के सिद्धांत को भविष्य की राह के रूप में प्रस्तावित करता है और यह निष्कर्ष देता है कि एक समतामूलक समाज के निर्माण के लिए दलित स्त्री की मुक्ति और उनकी चेतना का मुख्यधारा में आना अनिवार्य है।

प्रमुख शब्द– दलित नारीवाद, दोहरा शोषण, अंबेडकरवादी चेतना, दलित स्त्री साहित्य अस्मिता की खोज, सामाजिक आंदोलन, इंटरसेक्शनलिटी,जातिगत हिंसा, मानवीय गरिमा।

प्रस्तावना

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में नारी चेतना का विमर्श तब तक अधूरा है जब तक उसमें दलित स्त्री के विशिष्ट अनुभवों और संघर्षों को सम्मिलित न किया जाए। दलित स्त्री चेतना केवल लिंग आधारित भेदभाव की कहानी नहीं है, बल्कि यह जाति, वर्ग और लिंग के तिहरे शोषण के विरुद्ध उपजी एक प्रखर वैचारिक क्रांति है। भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था और पितृसत्तात्मक ढांचे ने दलित महिला को एक ऐसी स्थिति में धकेल दिया था जहाँ वह समाज के सबसे अंतिम पायदान पर खड़ी थी। उसे दलितों में भी दलित माना गया, क्योंकि जहाँ एक ओर वह जातिवाद के कारण सार्वजनिक अपमान और छुआछूत का शिकार थी, वहीं दूसरी ओर अपने ही समुदाय के भीतर वह पुरुष प्रधानता के दबाव में थी। अतः, दलित स्त्री चेतना का उदय किसी सामान्य सुधार आंदोलन की परिणति नहीं, बल्कि सदियों के मौन को तोड़कर अपनी मानवीय गरिमा की पुनः प्राप्ति का एक साहसिक प्रयास है। मुख्यधारा के नारीवाद ने अक्सर भारतीय स्त्री की समस्याओं को केवल लिंग के चश्मे से देखा, किंतु दलित

स्त्री की चेतना ने यह स्पष्ट किया कि उनके लिए श्स्त्रीश होने के साथ–साथ श्अछूतश होने का दंश अधिक पीड़ादायक रहा है। यही कारण है कि दलित नारीवाद एक स्वतंत्र पहचान के रूप में उभरा, जो सवर्ण नारीवाद और पुरुषवादी दलित आंदोलन दोनों की सीमाओं को चुनौती देता है।

ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो दलित स्त्री चेतना की जड़ें महात्मा जोतिराव फुले, सावित्रीबाई फुले और विशेष रूप से बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों में निहित हैं। बाबा साहेब ने यह भली–भाँति समझ लिया था कि किसी भी समाज की प्रगति का आकलन उस समाज की महिलाओं की प्रगति से किया जाना चाहिए। उन्होंने दलित महिलाओं को शिक्षित होने, संगठित होने और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का जो मंत्र दिया, उसने स्वतंत्रता के बाद एक नई पीढ़ी की चेतना को आकार दिया। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में शिक्षा के प्रसार और संवैधानिक सुरक्षा के प्रावधानों ने दलित स्त्रियों को अपनी पीड़ा को अस्मिता में बदलने का अवसर प्रदान किया। यह चेतना केवल आँसुओं की भाषा नहीं बोलती, बल्कि यह अधिकारों और आत्म–सम्मान की भाषा है। आज की दलित स्त्री अपनी पहचान को केवल जातिगत हीनता के साथ नहीं जोड़ती, बल्कि वह उस महान श्रम संस्कृति और प्रतिरोध की विरासत की उत्तराधिकारी के रूप में स्वयं को देखती है जिसने भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी और मानवीय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

यह चेतना विशेष रूप से 20वीं सदी के उत्तरार्ध में दलित लेखिकाओं की आत्मकथाओं और साहित्य के माध्यम से प्रस्फुटित हुई। जब दलित महिलाओं ने अपनी कलम उठाई, तो उन्होंने केवल अपनी व्यथा नहीं लिखी, बल्कि समाज के उस कुरूप चेहरे को भी उजागर किया जिसे मुख्यधारा के साहित्य ने सदैव अनदेखा किया था। उनके लिए संघर्ष का अर्थ केवल राजनीतिक भागीदारी नहीं, बल्कि उस ब्राह्मणी पितृसत्ता से मुक्ति प्राप्त करना है जिसने उनके शरीर, श्रम और गरिमा पर एकाधिकार स्थापित कर रखा था। अतः, यह लेख दलित स्त्री चेतना के उन विभिन्न आयामों की पड़ताल करता है जो स्वतंत्रता के बाद के दशकों में संघर्ष, शिक्षा और साहित्य के माध्यम से विकसित हुए हैं। यह अध्ययन केवल एक पीड़ित वर्ग का विवरण मात्र नहीं है, बल्कि यह उस अदम्य जिजीविषा और चेतना का उत्सव है जिसने भारतीय सामाजिक विमर्श की दिशा और दशा को बदलने का कार्य किया है।

शोध पद्धति–

प्रस्तुत शोध लेख में गुणात्मक शोध पद्धति (Qualitative Research Methodology) का प्रयोग किया गया है, जो दलित स्त्री के अनुभवों, उनकी सामाजिक स्थिति और चेतना के विकास के सूक्ष्म विश्लेषण पर केंद्रित है। शोध का स्वरूप मुख्य रूप से ऐतिहासिक और विवरणात्मक है, जिसमें कालक्रम के अनुसार दलित स्त्री के संघर्षों के बदलते आयामों को समझने का प्रयास किया गया है। सूचनाओं और डेटा के संकलन के लिए द्वितीयक स्रोतों का व्यापक उपयोग किया गया है। इसमें दलित लेखिकाओं की प्रसिद्ध आत्मकथाओं, शोध पत्रिकाओं, समाजशास्त्रीय लेखों और मानवाधिकार संगठनों (जैसे– ह्यूमन राइट्स वॉच और दलित महिला संगठनों) की रिपोर्टों को आधार बनाया गया है।

साहित्य समीक्षा

दलित स्त्री चेतना के क्षेत्र में उपलब्ध साहित्य का अवलोकन करने पर एक समृद्ध और वैचारिक विविधता दृष्टिगोचर होती है। इस विषय पर शुरुआती और सबसे महत्वपूर्ण वैचारिक आधार बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर के लेखन और भाषणों में मिलता है, जिन्होंने दलित महिलाओं को श्समाज के विकास का मापदंड मानकर उनके सशक्तीकरण का आह्वान किया था। साहित्यिक धरातल पर बेबी ताई कांबले की आत्मकथा श्जीण आमुचंश और कौशल्या बैसंत्री की दोहरा अभिशाप जैसी रचनाएँ मील का पत्थर मानी जाती हैं। ये कृतियाँ न केवल दलित महिलाओं के जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं, बल्कि मुख्यधारा के सवर्ण नारीवाद की सीमाओं को भी उजागर करती हैं। शर्मिला रेगे की पुस्तक राइटिंग कास्ट, राइटिंग जेंडर इस दिशा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण अकादमिक योगदान है, जो दलित महिलाओं के प्रशंसापत्रों के माध्यम से जाति और लिंग के अंतर्संबंधों की समाजशास्त्रीय व्याख्या करती है।

इसके अतिरिक्त, गोपाल गुरु और रावसाहेब कसबे जैसे विचारकों के लेखों ने दलित नारीवाद को एक स्वतंत्र पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पूर्व में हुए शोधों की समीक्षा से यह भी स्पष्ट होता है कि जहाँ पहले का साहित्य मुख्य रूप से शोषण और पीड़ा के चित्रण तक सीमित था, वहीं समकालीन साहित्य और शोध अब दलित महिला नेतृत्व, राजनैतिक एजेंसी और डिजिटल सक्रियता जैसे नवीन विषयों पर केंद्रित हो रहे हैं। गोपाल गुरु का प्रसिद्ध लेख दलित वूमेन टॉक डिफरेंटलीश इस विमर्श को एक नई दिशा प्रदान करता है, जो यह सिद्ध करता है कि दलित महिलाओं की आवाज और उनके अनुभव सवर्ण महिलाओं और दलित पुरुषों दोनों

से भिन्न और विशिष्ट हैं। प्रस्तुत शोध लेख इन्हीं पूर्ववर्ती साहित्यिक निष्कर्षों के प्रकाश में स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलित स्त्री के बदलते स्वरूप और उनकी बढ़ती चेतना का एक समेकित विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैचारिक आधार और अंबेडकरवादी प्रभाव

दलित स्त्री चेतना की ऐतिहासिक जड़ें स्वतंत्रता पूर्व के उन संघर्षों में निहित हैं, जिन्होंने भारतीय समाज की जड़ता को पहली बार चुनौती दी। औपनिवेशिक काल के दौरान दलित महिलाओं की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी; वे न केवल अस्पृश्यता के अमानवीय दंश को झेल रही थीं, बल्कि पितृसत्तात्मक ढांचे के भीतर भी वे सबसे निचले पायदान पर थीं। जहाँ सवर्ण महिलाओं का संघर्ष मुख्य रूप से घरेलू सुधारों और शिक्षा तक सीमित था, वहीं दलित महिला का संघर्ष सीधे तौर पर अपनी मानवीय अस्मिता को बचाने का था। इस पृष्ठभूमि में ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले के कार्यों ने पहली बार दलित स्त्रियों के लिए शिक्षा के द्वार खोले, किंतु इसे एक संगठित राजनीतिक और सामाजिक चेतना के रूप में स्थापित करने का श्रेय बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर को जाता है। डॉ. अंबेडकर ने यह भली–भांति समझ लिया था कि जब तक स्त्रियाँ जागरूक नहीं होंगी, तब तक पूरा समाज प्रगति नहीं कर सकता। उन्होंने दलित महिलाओं को संबोधित करते हुए उन्हें साफ–सुथरा रहने, अपने बच्चों को शिक्षित करने और हीनता की भावना को त्यागने का आह्वान किया। उनके द्वारा स्थापित अखिल भारतीय दलित महिला सम्मेलन (1942) ने दलित स्त्रियों के भीतर नेतृत्व की पहली बड़ी लहर पैदा की, जहाँ महिलाओं ने स्वयं अपनी समस्याओं पर प्रस्ताव पारित किए और सामाजिक सुधारों की माँग की।

इस चेतना के प्रसार में डॉ. अंबेडकर द्वारा संचालित समाचार पत्रों मूकनायक और बहिष्कृत भारत ने एक वैचारिक सेतु का कार्य किया। इन पत्रिकाओं के माध्यम से न केवल दलित पुरुषों को बल्कि दलित स्त्रियों को भी यह बोध कराया गया कि उनकी दासता प्राकृतिक नहीं, बल्कि मानव–निर्मित है। बहिष्कृत भारत के लेखों में अक्सर उन कुप्रथाओं पर प्रहार किया गया जो दलित स्त्रियों की गरिमा को ठेस पहुँचाती थीं, जैसे देवदासी प्रथा और बलात श्रम। इन संचार माध्यमों ने दलित समाज की महिलाओं को यह विश्वास दिलाया कि उनके पास भी अपनी आवाज उठाने का संवैधानिक और नैतिक अधिकार है। इन पत्रों में छपने वाले विचार धीरे–धीरे ग्रामीण अंचलों तक पहुँचे और दलित स्त्रियों ने सामाजिक उत्सवों, सार्वजनिक कुओं से पानी भरने और शिक्षा प्राप्त करने जैसे बुनियादी अधिकारों के लिए छोटे–छोटे स्तरों पर विद्रोह करना शुरू किया। यह संचार क्रांति ही थी जिसने बिखरे हुए दलित समाज को एक साझा पीड़ा और एक साझा लक्ष्य के सूत्र में पिरोया।

स्वतंत्रता की दहलीज पर खड़े भारत में दलित महिलाओं की संवैधानिक अधिकारों के प्रति उम्मीदें अत्यंत प्रबल थीं। डॉ. अंबेडकर जब संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष बने, तो दलित स्त्रियों ने इसे अपनी मुक्ति के घोषणापत्र के रूप में देखा। उन्हें विश्वास था कि जिस हिंदू कोड बिलश की बाबा साहेब वकालत कर रहे थे, वह उन्हें संपत्ति, विवाह और तलाक जैसे व्यक्तिगत कानूनों में पुरुषों के बराबर अधिकार दिलाएगा। स्वतंत्रता के समय दलित महिलाओं के लिए संवैधानिक अधिकार केवल वोट देने की शक्ति नहीं थे, बल्कि वे उस व्यवस्था से मुक्ति का आश्वासन थे जिसने उन्हें हज़ारों वर्षों से पैर की जूती के समान माना था। उनके लिए अनुच्छेद 14 की समानता और अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता का अंत केवल कानूनी शब्द नहीं थे, बल्कि एक नए जीवन की शुरुआत के वादे थे। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उम्मीदों के बोझ ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में उस दलित स्त्री चेतना को जन्म दिया, जिसने आगे चलकर साहित्य, राजनीति और समाज सुधार के क्षेत्रों में अपनी स्वतंत्र और मुखर पहचान बनाई।

दलित स्त्री चेतना के प्रमुख आयामः अस्मिता, शिक्षा और श्रम

स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलित स्त्री चेतना का सबसे प्रभावी आयाम पहचान के संकट और अस्मिताश की खोज के रूप में उभरा है। दलित महिला के लिए उसकी पहचान केवल स्त्री होने तक सीमित नहीं है और न ही केवल दलित होने तक; वह इन दोनों पहचानों के संमिलन के बीच अपने अस्तित्व को खोजती है। मुख्यधारा के समाज ने उसे सदैव एक श्अदृश्य इकाईश माना, जहाँ उसके स्त्रीत्व को जातिगत हीनता के कारण गरिमा नहीं दी गई। इस दोहरी पहचान के कारण दलित महिला ने एक ऐसी साझा चेतना का विकास किया जो उसे सवर्ण नारीवाद और पितृसत्तात्मक दलित विमर्शकृदोनों से अलग खड़ा करती है। उसकी अस्मिता की यह खोज वास्तव में उस आत्म–सम्मान की पुनः प्राप्ति है, जिसे सामाजिक व्यवस्था ने हज़ारों वर्षों तक नकारा था। आज की दलित स्त्री अपनी पहचान को केवल एक पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी योद्धा के रूप में देखती है जिसने जाति और लिंग की दोहरी बेड़ियों को काटकर अपनी स्वतंत्र राह बनाई है।

इस अस्मिता को सुदृढ़ करने में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन की भूमिका सर्वोपरि रही है। शिक्षा केवल

साक्षरता नहीं, बल्कि दलित महिलाओं के लिए तीसरी आँख सिद्ध हुई है, जिसने उन्हें उनके शोषण की वैज्ञानिक और सामाजिक जड़ों को समझने का सामर्थ्य दिया। पहली पीढ़ी की शिक्षित दलित महिलाओं का संघर्ष अत्यंत प्रेरणादायी और चुनौतीपूर्ण रहा है; उन्हें स्कूलों और कॉलेजों में न केवल संसाधनों के अभाव से लड़ना पड़ा, बल्कि सहपाठियों और शिक्षकों के जातिगत पूर्वाग्रहों का भी सामना करना पड़ा। बावजूद इसके, शिक्षा के माध्यम से उपजी इस चेतना ने दलित समाज के भीतर एक नए नेतृत्व को जन्म दिया। ये शिक्षित महिलाएँ अब केवल अपने लिए ही नहीं, बल्कि अपने पूरे समुदाय के लिए अधिकारों की बात कर रही हैं। शिक्षा ने उनके भीतर उस वैचारिक साहस को जन्म दिया है, जिसके बल पर वे पितृसत्तात्मक सामाजिक मानदंडों को चुनौती दे रही हैं और प्रशासनिक व व्यावसायिक क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं।

चेतना का तीसरा अनिवार्य आयाम आर्थिक स्वावलंबन और श्रम से जुड़ा है। भारत के असंगठित क्षेत्रों, विशेषकर कृषि और सफाई कार्यों में दलित महिलाओं का श्रम रीढ़ की हड्डी के समान है, किंतु विडंबना यह है कि इस श्रम को कभी उचित सम्मान या पारिश्रमिक नहीं मिला। दलित महिला का आर्थिक संघर्ष पुरुष के मुकाबले अधिक जटिल है, क्योंकि उसे कार्यस्थल पर जातिगत भेदभाव और यौन असुरक्षा का सामना करना पड़ता है। खेतीहर मज़दूर के रूप में हो या सफाई कर्मचारी के रूप में, दलित महिला ने सदैव अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाई है। उनके लिए आर्थिक सशक्तीकरण का अर्थ केवल मजदूरी प्राप्त करना नहीं है, बल्कि उस शोषणकारी व्यवस्था को चुनौती देना है जो उनके श्रम का मूल्य उनकी जाति के आधार पर तय करती है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की इस ललक ने उनमें वह चेतना जगाई है कि वे अब सरकार की कल्याणकारी योजनाओं और न्यूनतम मजदूरी जैसे विधिक अधिकारों के लिए संगठित होकर संघर्ष कर रही हैं।

दलित स्त्री साहित्यः प्रतिरोध और अभिव्यक्ति का स्वर

दलित स्त्री साहित्य केवल शब्दों का संकलन नहीं है, बल्कि यह सदियों के मौन को तोड़ने वाली एक गर्जना है। इस साहित्य का सबसे सशक्त रूप आत्मकथाओं में देखने को मिलता है, जिन्होंने भारतीय साहित्य के प्रतिमानों को पूरी तरह बदल दिया। बेबी ताई कांबले की जीण आमुचं (हमारा जीवन) और कौशल्या बैसंत्री की श्दोहरा अभिशापश जैसी रचनाएँ केवल व्यक्तिगत व्यथा की कथाएँ नहीं हैं, बल्कि ये पूरे दलित समाज की सामूहिक स्मृतियाँ और संघर्षों के दस्तावेज हैं। दोहरा अभिशाप शीर्षक ही अपने आप में उस स्थिति को स्पष्ट कर देता है जहाँ एक महिला जाति और लिंग के दोहरे जुल्म को सहती है। इन आत्मकथाओं ने पहली बार घर की चारदीवारी के भीतर और बाहर होने वाले उस सूक्ष्म शोषण को सार्वजनिक किया, जिसे अब तक परंपरा के नाम पर ढँका गया था।

दलित महिलाओं द्वारा रचित कविता और कहानियाँ पितृसत्ता और जातिवाद के विरुद्ध एक खुला विद्रोह प्रस्तुत करती हैं। इनकी भाषा अलंकृत नहीं बल्कि यथार्थवादी और मारक है, जो पाठक की संवेदनाओं को झकझोर देती है। ये रचनाएँ सवर्ण समाज के दोगलेपन और दलित समुदाय के भीतर व्याप्त पुरुषवादी अहंकार पर कड़ा प्रहार करती हैं। लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि उनका शरीर और उनका मन किसी की जागीर नहीं है। साहित्य ने उन्हें वह मंच प्रदान किया जहाँ वे अपनी पीड़ा को श्शक्तिश में बदल सकीं। इसके माध्यम से उन्होंने न केवल अपनी बात कही, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी यह संदेश दिया कि दलित स्त्री की समस्याएँ वैश्विक मानवाधिकारों का हिस्सा हैं।

अंततः, साहित्य के माध्यम से अपनी बात रखना दलित महिलाओं के लिए एक राजनीतिक कार्य बन गया है। इसने उन्हें विषय से कर्ता में बदल दिया है। जब एक दलित महिला अपनी कहानी खुद लिखती है, तो वह उन तमाम पूर्वाग्रहों को नष्ट कर देती है जो दूसरों ने उसके बारे में गढ़े थे। यह साहित्य ही है जिसने दलित स्त्री चेतना को एक बौद्धिक आधार प्रदान किया और उसे वैश्विक विमर्श का हिस्सा बनाया। आज दलित लेखिकाओं की आवाजें केवल भारत की सीमाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे पूरी दुनिया के उत्पीड़ित समाजों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गई हैं। साहित्य के माध्यम से उपजा यह प्रतिरोध ही वह मशाल है जो भविष्य में एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज का मार्ग प्रशस्त करेगी।

सामाजिक संघर्ष और आंदोलनरू संगठित प्रतिरोध की शक्ति

स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलित स्त्री चेतना केवल साहित्य और विमर्श तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसने श्सामाजिक आंदोलनोंश के माध्यम से धरातल पर अपनी शक्ति का परिचय दिया। 1990 के दशक में दलित महिला संगठनों का स्वतंत्र उदय भारतीय नारीवाद के इतिहास की एक युगांतकारी घटना थी। नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित विमेन और श्ऑल इंडिया दलित महिला अधिकार मंचश जैसे संगठनों ने यह स्पष्ट कर दिया कि दलित महिलाओं की समस्याएँ सामान्य नारीवादी आंदोलनों या पुरुष प्रधान दलित आंदोलनों से भिन्न हैं। इन संगठनों

ने अंतरराष्ट्रीय मंचों (जैसे डरबन सम्मेलन) पर जातिगत भेदभाव को मानवाधिकारों के हनन के रूप में प्रस्तुत किया। इन आंदोलनों ने दलित स्त्री को एक ऐसी राजनैतिक कर्ता के रूप में स्थापित किया जो अब स्वयं अपने एजेंडे निर्धारित करती है। यह संगठित प्रतिरोध ही था जिसने समाज को यह सोचने पर विवश किया कि श्जातिश और श्लिंगश को अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता।

दलित महिलाओं का एक बड़ा संघर्ष हिंसा के विरुद्ध रहा है। जातिगत हिंसा और यौन उत्पीड़न के मामलों में दलित महिलाएँ अक्सर सबसे अधिक सॉफ्ट टारगेट रही हैं, जहाँ यौन हिंसा का प्रयोग उनके पूरे समुदाय को अपमानित करने के एक हथियार के रूप में किया जाता रहा है। खैरलांजी से लेकर हालिया हाथरस जैसी घटनाओं तक, दलित महिलाओं ने न्याय की माँग को लेकर सड़कों पर उतरकर प्रशासन और न्यायिक व्यवस्था की संवेदनहीनता को चुनौती दी है। इन आंदोलनों ने अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन की लड़ाई लड़ी है। यह संघर्ष केवल कानूनी न्याय प्राप्त करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उस सामाजिक सोच के विरुद्ध है जो दलित स्त्री के शरीर और सम्मान को अपनी जागीर समझती है।

इस संघर्ष का एक सकारात्मक आयाम श्आरक्षण और राजनीतिक भागीदारीश के रूप में प्रकट हुआ है। 73वें और 74वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों और नगर निकायों में दलित महिलाओं की उपस्थिति ने ग्रामीण सत्ता संरचना को बुनियादी रूप से प्रभावित किया है। यद्यपि उन्हें दोहरी चुनौती का सामना करना पड़ाकृएक ओर पितृसत्तात्मक समाज और दूसरी ओर सवर्ण वर्चस्वकृतथापि दलित महिला सरपंचों और पार्षदों ने शिक्षा, स्वास्थ्य और सामुदायिक विकास के कार्यों में अपनी नेतृत्व क्षमता सिद्ध की है। उनकी यह भागीदारी केवल प्रशासनिक नहीं है, बल्कि यह उस सामाजिक पदानुक्रम को ध्वस्त करने की प्रक्रिया है जिसने उन्हें सदियों तक सत्ता और निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखा था। आज दलित स्त्री की राजनीतिक चेतना उसे स्थानीय निकायों से आगे बढ़कर राज्य और राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में अपना स्थान बनाने के लिए प्रेरित कर रही है।

समकालीन चुनौतियाँः आधुनिकता के बीच पुराने द्वंद्व

21वीं सदी के भारत में जहाँ विकास और आधुनिकता के बड़े दावे किए जा रहे हैं, वहीं दलित महिला के समक्ष श्शहरीकरणश एक नई और जटिल चुनौती लेकर आया है। शहरी क्षेत्रों में अक्सर यह माना जाता है कि जातिगत भेदभाव समाप्त हो गया है, किंतु वास्तविकता यह है कि यहाँ भेदभाव ने केवल अपना रूप बदल लिया है। शहरीकरण ने दलित महिलाओं को कुछ हद तक गुमनामी और नए अवसर तो दिए हैं, लेकिन आवास, रोजगार और सामाजिक जुड़ाव के स्तर पर पुराना भेदभाव नए स्वरूपों में मौजूद है। शहरों के स्लम क्षेत्रों में रहने वाली दलित महिलाएँ आज भी बुनियादी नागरिक सुविधाओं और सुरक्षित कार्य वातावरण के लिए संघर्ष कर रही हैं। यहाँ उनकी पहचान अक्सर सस्ती मजदूरी तक सीमित कर दी गई है, जहाँ उन्हें आधुनिक अर्थव्यवस्था के सबसे कठिन और असुरक्षित क्षेत्रों में श्रम करना पड़ता है।

एक अन्य उभरती हुई चुनौती डिजिटल डिवाइड की है। सूचना और तकनीक के इस युग में डिजिटल पहुँच ही सशक्तिकरण का नया पैमाना है। दलित महिलाएँ, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से पहले से ही पिछड़ी हुई हैं, इस डिजिटल क्रांति की दौड़ में सबसे पीछे छूट जाने के जोखिम का सामना कर रही हैं। शिक्षा और संसाधनों के अभाव के कारण तकनीक तक उनकी पहुँच सीमित है, जिससे वे डिजिटल साक्षरता, ऑनलाइन रोजगार और सूचनाओं के लाभ से वंचित रह जाती हैं। यह डिजिटल अंतर उनकी चेतना और विकास के मार्ग में एक नई दीवार खड़ी कर रहा है। इसके साथ ही, सोशल मीडिया पर दलित महिलाओं को मिलने वाली ऑनलाइन नफरत और ट्रोलिंग उनके मानसिक स्वास्थ्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करती है।

सामाजिक न्याय की योजनाओं के कार्यान्वयन में आने वाली जातिगत बाधाएं भी एक निरंतर चुनौती बनी हुई हैं। यद्यपि सरकार द्वारा दलित महिलाओं के उत्थान हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाएँ चलाई जा रही हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर भ्रष्टाचार और नौकरशाही के जातिगत पूर्वाग्रह इन योजनाओं के लाभ को पात्र महिलाओं तक पहुँचने से रोकते हैं। कई बार स्थानीय प्रभाव रखने वाले लोग इन लाभों को हड़प लेते हैं या दलित महिलाओं को उनके अधिकारों से अनभिज्ञ रखा जाता है। अतः, आज की सबसे बड़ी आवश्यकता केवल योजनाओं का निर्माण नहीं, बल्कि एक ऐसी पारदर्शी और संवेदनशील वितरण प्रणाली की है जो जातिगत संकीर्णताओं से मुक्त हो। भविष्य की राह इसी बात पर निर्भर करती है कि हम इन आधुनिक चुनौतियों का समाधान संवैधानिक मूल्यों और सामाजिक संवेदनशीलता के मेल से कैसे करते हैं।

निष्कर्ष

स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलित स्त्री चेतना का सफर एक मूक और शोषित वर्ग के मुखर नेतृत्व में बदलने की गाथा है। आज दलित स्त्री चेतना का वर्तमान स्वरूप संघर्ष से सशक्तीकरण की उस अवस्था में पहुँच चुका है,

जहाँ वह केवल दया या सहानुभूति की माँग नहीं करती, बल्कि बराबरी और न्याय का दावा पेश करती है। यह चेतना अब केवल व्यक्तिगत पीड़ा तक सीमित नहीं है, बल्कि इसने एक सामूहिक राजनीतिक और सामाजिक पहचान का रूप ले लिया है। शिक्षा, साहित्य और आंदोलनों के माध्यम से दलित महिलाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे अपनी नियति की स्वयं निर्माता हैं। यद्यपि मार्ग में अब भी अनेक बाधाएं हैं, किंतु दलित स्त्रियों में उपजी यह नई चेतना उन्हें उन बेड़ियों को तोड़ने का साहस प्रदान करती है जो उन्हें हज़ारों वर्षों से समाज के हाशिए पर रखे हुए थीं। यह सशक्तीकरण केवल आर्थिक या राजनीतिक नहीं है, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक मुक्ति का आंदोलन है जिसने दलित स्त्री को अपनी अस्मिता पर गर्व करना सिखाया है।

भविष्य की राह को सुगम बनाने के लिए यह अनिवार्य है कि हम जाति और लिंग के संमिलन की अवधारणा को गहराई से समझें। जब तक भारतीय समाज और नीति–निर्माता दलित महिला की समस्याओं को केवल श्महिलाश या केवल दलित के चश्मे से देखेंगे, तब तक उनके साथ पूर्ण न्याय संभव नहीं होगा। उनकी चुनौतियाँ अनूठी हैं, क्योंकि वे एक साथ दो अलग–अलग प्रकार के उत्पीड़न का सामना करती हैं। भविष्य का नारीवाद और सामाजिक आंदोलन तभी सार्थक होंगे जब वे इस तिहरे शोषण (जाति, वर्ग और लिंग) को संबोधित करेंगे। इसके लिए अकादमिक जगत, न्यायपालिका और नागरिक समाज को अपनी दृष्टि में विस्तार करना होगा ताकि दलित स्त्री के विशिष्ट अनुभवों को मुख्यधारा के विमर्श में वह स्थान मिल सके जिसका वे हक रखती हैं। यह संमिलन ही वह चाबी है जो भविष्य के समावेशी भारत के द्वार खोलेगी।

अंततः, एक सच्चे समतामूलक समाज के निर्माण में दलित स्त्री चेतना की भूमिका अपरिहार्य है। कोई भी राष्ट्र तब तक पूर्णतः लोकतांत्रिक या आधुनिक नहीं कहला सकता जब तक उसकी आबादी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा जातिगत और लैंगिक असुरक्षा के साये में जीने को मजबूर हो। दलित स्त्री की मुक्ति वास्तव में पूरे भारतीय समाज की मुक्ति का मार्ग है, क्योंकि वह समाज की सबसे जटिल और क्रूर असमानताओं को चुनौती देती है। जब समाज की सबसे अंतिम कतार में खड़ी महिला को गरिमा, सुरक्षा और अवसर प्राप्त होंगे, तभी संवैधानिक न्याय का सपना धरातल पर साकार होगा। अतः दलित स्त्री चेतना न केवल दलितों का मुद्दा है, बल्कि यह भारतीय लोकतंत्र के शुद्धिकरण और मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का एक अनिवार्य प्रकल्प है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ सूची–

1. कसबे, रावसाहेब. अंबेडकरवाद, तत्व और व्यवहार. सुगावा प्रकाशन, 2005.
2. ओमन, टी. के. दलित विमर्श, मुद्दे और चुनौतियाँ. वाणी प्रकाशन, 2010.
3. अग्रवाल, पुरुषोत्तम. स्वतंत्रता के बाद का भारत. राजकमल प्रकाशन, 2012.
4. बैसंत्री, कौशल्या. दलित चेतना और महिला संघर्ष. किताबघर प्रकाशन, 2005.
5. तिलक, रजनी. दलित स्त्री आंदोलन के बदलते आयाम. वाणी प्रकाशन, 2014.
6. रमन, एन. दलित विमेन इन इंडिया, इश्यूज एंड पर्सपेक्टिव्स. कलपज़ पब्लिकेशन्स, 2011.
7. रेगे, शर्मिला. राइटिंग कास्ट, राइटिंग जेंडर, रीडिंग दलित विमेन टेस्टिमोनोइल्स. ज़ुबान बुक्स, 2006.
8. फुले, सावित्रीबाई. काव्य फुले. संकलन, एम.जी. माली, महाराष्ट्र सरकार, 1988.
9. कुमार, राधा. स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800–1990). वाणी प्रकाशन, 2006.
10. थारू, सुसी और के. ललिता. विमेन राइटिंग इन इंडिया, 600 B. C. प्रेजेंट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1991.
11. कौशल्या, बैसंत्री. दोहरा अभिशाप. रश्मि प्रकाशन, 1999.
12. कांबले, बेबी ताई. जीण आमुचं (हमारा जीवन). अनुवाद, सुभांगी देशमुख, राजकमल प्रकाशन, 2014.
13. चक्रवर्ती, उमा. पितृसत्ता का लिंगीकरण. अनुवाद, विमलेश कांति वर्मा, ग्रंथ शिल्पी, 2011.

अन्य संदर्भ ग्रन्थ–

1. अंबेडकर, भीमराव. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, राइटिंग्स एंड स्पीचेस, वॉल्यूम 17. शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, 2003.

2. गुरु, गोपाल. ष्दलित वूमेन टॉक डिफरेंटली, इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 30, अंक 41/42, 1995, पृ. 2548–2550.
3. गौतम, लक्ष्मण दत्त. दलित अस्मिता और साहित्य. अनामिका पब्लिशर्स, 2008.
4. जाटव, डी. आर. डॉ. अंबेडकर और भारतीय संविधान. सम्यक प्रकाशन, 2010.
5. पंवार, सुशीला. दलित महिला आत्मकथाएँ और संघर्ष. स्वराज प्रकाशन, 2015.
6. पाटिल, शरद. जाति–अंतक स्त्री–पुरुष विमर्श. लोकवाङ्मय गृह, 2008.
7. बामघेल, एच. एल. भारतीय समाज में दलित महिलाएँ. ओमेगा पब्लिकेशन्स, 2012.
8. मोदी, ईशा. दलित विमर्श और दलित महिलाएँ. अनुपम प्रकाशन, 2016.
9. मून, मीनाक्षी और उर्मिला पवार. आम्हीही इतिहास घडवला (हमने भी इतिहास बनाया). सुगावा प्रकाशन, 1989.
10. लोखंडे, भगवान दास. दलित साहित्य का समाजशास्त्र. चिन्मय प्रकाशन, 2013.
11. वर्मा, अंजना. दलित महिला अधिकार और कानून. सामयिक प्रकाशन, 2018.
12. सिंह, सुशीला. नारीवाद और भारतीय साहित्य. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2001.

Cite this Article-

"पुजा कुमारी; डॉ० स्वर्ण मणि", "स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलित स्त्री चेतना और संघर्ष", ResearchNext International Multidisciplinary Journal, ISSN: 3107-9725 (Online), Volume:2, Issue:1, January-March 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."